बीज बचाओ आन्दोलन

सेवा में,
माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी
प्रधानमंत्री, भारत
नई दिल्ली

विषय – 22 मार्च, 2015 : किसानों से मन की बात – किसानों के मन की बात

मान्यवर मोदी जी,
सादर वन्दे। किसानों की सेवा बॉचना। इधर पहाड़ों में मौसम का हाल बेहाल है। चैत्र के महीने में भी कॅपकॅपी छूट रही है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री व यमनोत्री सहित अन्य पहाड़ियों में बेमौसम बर्फ़ पड़ गई है। खेती किसानी का हाल बुरा है। कहीं रबी की फसल की बुआई इसलिये नहीं हो पाई थी, कि मानसून में 15 अगस्त के बाद अब जम कर बारिश हो रही है व उच्च हिमालय में बर्फ़ पड़ रही है। 15 अगस्त को हम स्वतंत्रता दिवस इसलिये नहीं मना पाये, क्योंकि जगह–जगह भारी बादल फटे, भूस्खलन हुआ और भारी बाढ़ आई। उसके बाद मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन सूखे की चपेट में रहे। हम और हमारी सरकारें भूल जाते हैं। 2012 में भी उत्तरकाशी सहित कई स्थानों में बादल फटने और बिजली परियोजना के मलबे से भारी तबाही मची थी और 2013 में 15,16,17 जून को अचानक बद्रीनाथ–केदारनाथ सहित सारे उच्च हिमालय में ऐसा बेमौसम मानसून बरसा, कि 10 हज़ार से अधिक तीर्थ यात्री व स्थानीय लोग भारी बाढ़ के मलबे के नीचे हमेशा–हमेशा के लिये दफ़न हो गये। पिछले दो–ढाई दशक से सब कुछ उल्टा–पुल्टा हो रहा है, मोदी साहब। कुछ समझ में नहीं आता, यह निर्भागी मौसम किसानों के पीछे क्यों पड़ा है। आशा है, वहॉ राजधानी दिल्ली और अमरीका व जापान आदि मुल्कों में विकास की गति ठीक–ठाक चल रही होगी। विकास ठीक चलना चाहिये, बाकी तो.....

मान्यवर, एक छोटा किसान और गत 25–30 सालों से खेती किसानी की समस्या के संदर्भ में **बीज बचाओ आन्दोलन** कार्यकर्ता होने के नाते जब हमने सुना कि हमारे देश के प्रधानमंत्री जी पहली बार किसानों से बात करने वाले हैं और कुछ सुझाव भी मॉग रहे हैं, तो यह पत्र लिखने की हिम्मत जुटा पाया हूँ। खुशी हुई, किन्तु अचानक 'मन की बात' शब्द हमारे मन को छू गया और आज देश की खेती के हालात देख कर मन उदासी से भर आया। याद आ रही है, 25–30 साल पूर्व गुज़रे दिनों की जब हमारे देश में छः ऋतुयें – वसन्त, ग्रीष्म, बरसात, शिशिर, हेमंत व शरद् निश्चित क्रम में आती–जाती थीं। किसान निर्धारित वक्त पर बीज बोते थे, निराई–गुड़ाई करते थे और यथा समय कटाई होती थी, जलवायु, मौसम कहीं रोड़ा नहीं था। पशुधन, गाय, बछड़ों, बैलों व भैसों से घर–ऑगन भरे रहते थे। हमारे चाल, खाल, तालाब/बावड़ियॉ पानी से लबालब भरी रहती थीं, वहॉ पशुधन विराजमान रहता था, चारों ओर गाय–बैलों की घंटियों का मधुर संगीत गूँजता था। गॉवों के अपने जंगल थे, जहॉ से पशुओं के लिये पर्याप्त चारा और खेती के औज़ार भी मिलते थे। मुंशी प्रेमचंद के हीरा–मोती और होरी....आह....। खेत, खलिहान और घर के कुठार, विविधता–युक्त अनाज, दलहन, तिलहन और साग–भाजी से भरे रहते थे। जिसे खाकर लोग स्वस्थ प्रसन्नचित रहते थे, बीमारियॉ पास नहीं फटकती थीं। तभी राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी ने ग्राम स्वराज्य को आगे बढ़ाने की बात कही थी।

लेकिन, आज देश के गॉवों से बुरी ख़बरे आ रही हैं। न घर के बीज रहे, न खाद, न बैल, न विविधता–युक्त खाद्यान्न। मैदानी गॉवों में बैलों की घंटियों की जगह ट्रैक्टरों की भौंडी गड़गड़ाहट सुनाई देती है। बैलों के गोबर और जैविक खाद की जगह रासायनिक खाद और तेल के ईंधन से ऑखों में पानी आ जाता है। मौसम के हाल का वर्णन तो पहले आ ही चुका है। किसानों पर विपत्ति का पहाड़ टूट रहा है। आपने खूब सुना होगा, कि अब तक 3 लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं। राजनीतिज्ञों को चुनाव के वक़्त हमारी याद आती है...बस।

मान्यवर मोदी जी, आप कहते हैं, कि देश का कम विकास हुआ, जिसे पूरा करने के लिये आप दिन–रात मेहनत में लगे हैं। परन्तु इतनी सच्चाई ज़रूर है, कि देश में छोटा कर्मचारी पदोन्नत होकर अधिकारी बना, छोटा व्यापारी बड़ा बना, छोटा उद्योगपति बड़ा उद्योपति बना, छोटे शहर बड़े हुये और अब तो हाई–टैक होते जा रहे हैं, लेकिन भारतीय गॉव क्यों उजड़ रहे हैं? किसान क्यों आत्महत्या कर रहे हैं और नई पीढ़ी खेती छोड़ कर क्यों शहरों की तरफ़ मज़दूर बनने के लिये पलायन कर रही है? किसानों के विकास के लिये देश में हरित क्रॉति आई थी। पहले–पहल मैक्सिको से गेहूँ का चमत्कारी बीज आया, उसके साथ रासायनिक खादें आईं, बम्पर पैदावार भी हुई, किसान खुश हुये, देश का अनाज भण्डार बढ़ा। लेकिन कुछ समय बाद फसलों में बीमारियॉ फैलने लगीं। वैज्ञानिक कीटनाशक ज़हर को दवा कहकर प्रस्तुत करने लगे। कीटनाशक ज़हरों का खूब छिड़काव होने लगा। आरम्भ में प्रदर्शन के नाम पर बीज, खाद, कीटनाशक मुफ़्त मिले, किन्तु जब किसान के पास घर का बीज न रहा, तो बीज, खाद खरीदना किसान की मजबूरी बना। नये बीजों के साथ नई खरपतवार आई, तो पीछे से खरपतवार नाशक भी आ गया। बैलों की जगह ट्रैक्टर आये, जो घास खाने की जगह तेल पीने लगे और गोबर की जगह प्रदूषण देने लगे। किसानों ने परम्परानुसार नये बीजों को अगली फसल के लिये रखने का प्रयास किया, किन्तु ये बीज खराब होने लगे और पैदावार गिरने लगी। हरेक फसल के नये–नये बीज आये, किन्तु किसानों के विविधता–युक्त घरेलू बीज और घरेलू संसाधन कब लुप्त हुये, पता ही नहीं चला। घर की खेती पराई होने लगी, खेती की लागत बढ़ती गई और अब लाभ भी कम होने लगा। आमदनी अट्ठन्नी, खर्चा रुपया वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। और फिर एक दौर ऐसा आया, कि किसानों की आत्महत्या की शुरुआत हुई, जो निरन्तर आगे बढ़ती जा रही है। अब किसान कर्ज़ के जाल में फॅसे हैं। जब गॉठ में पैसा न हो, तो बैंकों और साहूकारों की शरण में न जायें, तो फिर कहॉ जायें?

मान्यवर, प्रधानमंत्री बनने के कुछ दिनों बाद आपने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के दिल्ली स्थित पूसा इंस्टीट्यूट का दौरा किया। हमने सोचा आप वैज्ञानिकों की क्लास लेकर पूछेंगे, कि हमारे मुल्क के लाखों ग़रीब किसान आत्महत्या क्यों कर रहे हैं? इसके लिये कौन ज़िम्मेदार है? दुःख हुआ, कि आपने भी वही नारा दिया 'प्रयोगशाला से खेत तक' ....इसी नारे ने तो हमारा सत्यानाश किया। भारतीय कृषि अनुसंधान ज़रूर नाम है, लेकिन यहॉ तो ज़्यादा अनुसंधान अमरीकी और पश्चिमी कृषि और वहॉ की बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कारोबार बढ़ाने के लिये होता आया है।

माननीय मोदी जी, अगर आप भारतीय खेती की बात समझना चाहते हैं, तो अमरीका की खेती का मॉडल छोड़ना होगा। वहॉ केवल डेढ़–दो फीसदी किसान हैं और हमारे यहॉ 70 प्रतिशत जनता की आजीविका का आधार खेती रहा है, भले ही हरित क्रॉति का अमरीकी मॉडल अपना कर मौत के घाट उतरने और कृषि छोड़ने की वजह से अब किसानों की संख्या कम हो गई हो। अमरीका की सभ्यता तीन–चार सौ साल मात्र की है, किन्तु हमारी खेती–पशुपालन की सभ्यता व संस्कृति हज़ारों साल या अनादिकाल पुरानी है। भगवान कृष्ण भी

गाय चराते थे। हमारे योजनाकारों ने खेती का पश्चिमी मॉडल अपना कर, सिर्फ़ गेहूँ चावल की उपज बढ़ाकर वाह–वाही ज़रूर लूटी, किन्तु इसके बदले किसानों को हज़ारों–लाखों तरह के विविधता–युक्त बीजों या जैव–विविधता को खोना पड़ा है। विविधता–युक्त खान–पान की संस्कृति का विनाश भी हुआ है। फलस्वरूप, आम उपभोक्ता कुपोषण तथा ख़तरनाक बीमारियों से घिर गये हैं। कितनी चालाक हैं, वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ। पहले लोगों को खतरनाक रासायनिक खाद, कीटनाशक और कथित उन्नत बीजों के मार्फ़त ज़हरीला खाना खिलाती हैं, उससे बीमारियॉ होती हैं, तो फिर जीवनरक्षक दवाइयों का कारोबार भी करती हैं।

फिर प्रधानमंत्री जी का यह जानना ज़रूरी है, कि भारतीय खेती किसानी क्या है –

खेती जीवन पद्धति तथा संस्कृति है...उसके साथ पशुधन तथा जंगल जुड़ा है। खेती को चलाने वाले किसान कहलाये। किसानों की आजीविका का मुख्य आधार अपने हाथों से उगाया विविधता–युक्त खाद्यान्न है, लेकिन किसान अन्नदाता भी है। अपने उपभोग के बाद बचे अनाज को वह अन्य उपभोक्ताओं तक भी पहुँचाता आया है, जो खेती नहीं करते। विविधता प्रकृति का स्वभाव है। खेती उसका महत्वपूर्ण हिस्सा है। खेती हमेशा विविधता–युक्त रही है। खेती को एकल और व्यापारिक बनाने का प्रयास खतरनाक है। एकल व्यापारिक खेती के दुष्परिणाम हमारे सामने किसानों की आत्महत्या के रूप में सामने आये हैं, इसीलिये ज़रूरी है, किसानों की जीवन पद्धति तथा संस्कृति को वापस लौटाने के प्रयास हों।

मिट्टी और खेती योग्य ज़मीन – मिट्टी सृष्टि का आधारभूत तत्व है। धरती को हम मॉ कहते आये हैं, किन्तु मिट्टी को हमारी विकास योजनाओं में महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला। मिट्टी किसान का मूलधन कहलाती थी। किन्तु आधुनिक उन्नत खेती ने किसान के इस मूलधन – मिट्टी या धरती मॉ के साथ रासायनिक ज़हरों से नाज़ायज़ छेड़छाड़ कर, एक तरह का बलात्कार किया है। मिट्टी की सेहत बिगड़ने से ज़हरीला खाद्यान्न पैदा हो रहा है। जिससे आम उपभोक्ताओं की सेहत बिगड़ कर ख़तरनाक बीमारियॉ पैदा होती हैं। जबकि पारम्परिक जैविक, प्राकृतिक खेती को थोड़ा सा वैज्ञानिक पुट देकर सभी लोगों को स्वादिष्ट, पौष्टिक भोजन दिया जा सकता है।

वर्तमान में भारत सरकार द्वारा घोषित भूमि अधिग्रहण कानून ब्रिटिश शासन से चले आ रहे कानून से भी ज़्यादा ख़तरनाक है। आप बार–बार कह रहे हैं, कि यह कानून किसानों की भलाई के लिये है। आप बताये ऐसे कानून की मॉग किसानों ने कब की है। यह ज़रूरी है, कि जन–हित की सड़कें, रेलवे लाइन, स्कूल व अस्पताल के लिये भूमि मिले....बताइये किसानों ने कब भूमि नहीं दी। किसानों ने भूमि दी है और देते रहेंगे, किन्तु देशी–विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बड़े–बड़े मॉलों, हाई–टैक सिटी, जैसे लवासा, एफडीआई व एसईज़ेड के लिये ग़रीब किसानों की आजीविका से जुड़ी खेती योग्य उपजाऊ ज़मीन लेना अन्याय ही नहीं, महा अन्याय है। सरकार से जुड़े लोग तर्क दे रहे हैं, कि किसानों को अच्छा प्रतिकर मिलेगा। मान्यवर ज़मीन के बदले अच्छे धन की बात पर, हमें पहाड़ की 'नाक बेच कर नथ पहनने' वाली पुरानी कहावत चरितार्थ होती दिखाई देती है। खेती की ज़मीन अचल सम्पत्ति है। उसके बदले पैसा कितने दिन चलेगा?

बीज

बीज सृष्टि का एक महत्वपूर्ण तत्व है। बीज किसी वैज्ञानिक या उद्योगपति ने प्रयोशाला में नहीं बनाया। हज़ारों वर्ष पूर्व किसानों के पुरखों ने जंगल से चुन–चुन कर बीजों का संकलन किया और पीढ़ी दर पीढ़ी अपने वंश

की तरह इन्हें आगे बढ़ाया। इन्हीं बीजों पर शोध कर वैज्ञानिकों ने नये बीज बनाये। लेकिन, वैज्ञानिक व बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ किसानों के साथ भस्मासुर की तरह सुलूक कर रही हैं। एक ज़माने में किसान पैसे से ग़रीब ज़रूर थे, लेकिन जैव–विविधता के मामले में बहुत अमीर थे। हरेक इलाके की भौगोलिक परिस्थिति के अनुकूल अलग–अलग जैव–विविधता थी। इसीलिये तो भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। कहते हैं, धान की लाखों प्रजातियॉ बाक़ायदा स्थानीय नामों से थीं। इन्हें यदि एक–एक दाना घड़े में जमा करें, तो घड़ा भर जाता था। गेहूँ, जौ, दलहन, तिलहन, ज्वार, बाजरा, मंडवा व सभी शाक–सब्ज़ियों की हज़ारों किस्में होती थीं। किन्तु आज देसी बीज ढूँढे नहीं मिलते। आज सर्वत्र बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीज दिखाई देते हैं। इसका मतलब यह नहीं, कि हमारे बीज उपज में कमज़ोर थे। कई पारम्परिक प्रजातियॉ जैविक खाद से कथित उन्नत बीजों के बराबर उपज देने में सक्षम हैं। क्या आम किसानों से मन की बात कर, यह सलाह देंगे, कि ऐसी खेती करें, जिसका बीज न रखा जा सके। यह कितना अन्याय है...खेती किसान करे और बीज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को खरीदना पड़े। यह किसानों के साथ धोखा नहीं, महाधोखा है। हरित क्रॉति की सफलता–विफलता की पड़ताल स्वतन्त्र आयोग द्वारा कराई जानी चाहिये, क्योंकि किसान सूख गये, कम्पनियॉ हरी हैं।

अब आपकी सरकार दूसरी हरित क्रॉति के नाम पर जीएम बीजों को लाने के कानून बनाना चाहती हैं, जिस ब्राई बिल का विपक्ष में रहते हुये आपकी पार्टी विरोध करती थी, उसे पास कराने या बिना संसद की अनुमति के लाने के लिये आप उतावले हो रहे हैं। अपने नागरिकों के स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के प्रति संवेदनशील दुनिया के कई देश जीएम बीजों के प्रति सावधान रहते हुये, उनकी अनुमति नहीं दे रहे हैं। किन्तु भारत सरकार अमरीकी कम्पनियों के दबाव में जीएम बीज लाने वाली है। अब तक प्राप्त जानकारियों के अनुसार जीएम तकनीक यहॉ के पारम्परिक बीजों एवं जैव संपदा को संदूषण के मार्फ़त भारी नुकसान पहुँचायेगी। उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा। आप इस संदर्भ में क्या सोचते हैं?

मोटे अनाज या पौष्टिक अनाज

मोटे अनाज जिन्हें कहा जाता है, देखने में वे गेहूँ, चावल से ज़्यादा बारीक हैं, किन्तु ग्रामीण जनता का मुख्य भोजन होने के कारण इन्हें मोटा–झोंटा अनाज कहा जाता है। इन अनाजों में ज्वार, बाजरा, मंडवा, कंगनी, चीना एवं कुटकी आदि शामिल हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से ये अनाज दुनिया के सबसे पौष्टिक अनाजों में आते हैं। जो उच्चतम मात्रा में कैल्शियम, प्रोटीन, रेशा, लौह व अनेक खनिज तथा विटामिनों के भंडार हैं। इसलिये किसान इन्हें पौष्टिक अनाज कहते हैं। पौष्टिक अनाज या मिलेट लोगों को अनेक बीमारियों से बचाते हैं तथा अनेक बीमारियों की दवा भी हैं। किन्तु ये अनाज सरकारी योजनाओं में उपेक्षा के शिकार हैं। पूर्व सरकार ने ''इंसिम्प'' योजना के अन्तर्गत इन्हें आगे बढ़ाने की योजना बनाई थी। किन्तु बाद में बंद कर दी। पौष्टिक अनाजों के बारे में आप क्या करेंगे। इन अनाजों को भविष्य की खेती इसलिये कहते हैं, क्योंकि इन्हें सिंचाई की ज़रूरत नहीं। सूखा, बाढ़ या अन्य खतरों को ये झेल जाते हैं। मिश्रित खेती में भी ये अच्छे होते हैं।

जलवायु और मौसम परिवर्तन – किसानों पर अप्रत्यक्ष मार

मान्यवर बेमौसम बारिश, सूखा, अतिवृष्टि व बाढ़ के प्रति पहले हमारे मन की धारणा थी, कि ये प्राकृतिक प्रकोप हैं। कलयुग आ रहा है। किन्तु वैज्ञानिक शोधों ने हमारी ऑखें खोल दी हैं। इसका असली कारण दुनिया का

अति विकास या उपभोक्तावादी सभ्यता है। बढ़ता प्रदूषण और ग्रीन हाउस गैसें इसके लिये ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं। जलवायु तथा मौसम परिवर्तन की मार शहरी व नौकरीपेशा लोगों को प्रभावित नहीं करती। उनकी तनख्वाह तो मिलती ही है, व्यापारियों का व्यापार भी चलता ही है। शहरी लोगों को गर्मी लगती है, तो वे ए.सी., फ्रिज व कूलर का इस्तेमाल करते हैं। सर्दी लगेगी, तो हीटिंग सिस्टम चलायेंगे। बिजली का ज़्यादा उपयोग कर वे मौसम को अपने अनुकूल बना लेते हैं।

प्रकृति या दैविक त्रासदी के नाम पर मौसम की अप्रत्यक्ष मार सीधी ग़रीब किसानों पर पड़ रही है। कभी सूखे से फसलें बर्बाद होती हैं, तो कभी अतिवृष्टि, बादल फटने से या बेमौसम बारिश से किसानों की मेहनत पर पानी फिर जाता है। अब कोई भी ऋतु या मौसम अपने निश्चित समय पर नहीं आता। मौसम का पूरा सन्तुलन ही बिगड़ गया है। अय्याशी करने वाले बड़े देश या हमारे देश के बड़े शहरों के लोग मौसम बिगाड़ें और उसके दुष्परिणाम ग़रीब किसान भुगतें। इससे बड़ा अन्याय और क्या हो सकता है। हम किसी न्याायालय में जायें?

- इसलिये ज़रूरी है, कि ऐसे विनाशकारी विकास और उपभोक्तावादी अपसंस्कृति को रोका जाये, जिससे जलवायु और मौसम प्रभावित हो रहा है। दुनिया के सभी देश संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित मानकों का पालन करें
- लघु एवं सीमांत किसानों को रबी तथा खरीफ़ फसल की कटाई के मौके पर हर छमाही में ज़मीन की उपज अनुसार नुकसान का प्रतिकर मिले
- जलवायु परिवर्तन के खतरे कम करने वाली मिलेट व मिश्रित खेती करने वाले किसानों को अतिरिक्त प्रतिकर मिले

उत्तराखण्ड के किसानों को मिले ग्रीन बोनस

- केंद्र सरकार ने पिछली बार उत्तराखण्ड के लिये ग्रीन बोनस की इसलिये शुरुआत की, क्योंकि यहॉ 65 प्रतिशत जंगल है। लेकिन यह जंगल सरकारी प्रयास से नहीं अपितु यहॉ के किसानों के पुरुषार्थ से है। यहॉ के किसानों ने 1970 के दशक में **चिपको आन्दोलन** चलाकर विश्व–प्रसिद्ध नारा दिया था।

क्या हैं जंगल के उपकार, मिट्टी पानी और बयार
मिट्टी पानी और बयार, ज़िन्दा रहने के आधार

लोगों ने सरकारी दमन को झेलते हुये जंगलों को कटने से बचाया। आज भी हज़ारों गॉवों के लोगों ने अपने संसाधनों से अपने आस–पास के आरक्षित या वन पंचायत के सामुदायिक मिश्रित जंगल बचा कर रखे हैं। इसलिये ग्रीन बोनस पर राज्य सरकार की बजाय उन ग्राम समुदायों का अधिकार है, जो सीधे तौर पर जंगल बचा रहे हैं।

मान्यवर अच्छे जंगलों की हरियाली के बावजूद भी आज हिमालयी क्षेत्रों में घटते ग्लेशियर, बार–बार बादलों के फटने से होने वाली तबाही और बर्फ़ का कम पड़ना चिन्ता का विषय है। कुछ विनाशकारी विकास तो आपको भी रोकना पड़ेगा, समझना पड़ेगा।

जंगली जानवरों की किसानों पर मार

मौसम की मार से यदि थोड़ी–बहुत फसलें बच भी गईं, तो दिन को बंदरों की टोलियॉ और रात को सूअर व नील गायों के झुॅड खेतों में आकर फसलों को तहस–नहस कर डालते हैं। हम उन्हें मार नहीं सकते, क्योंकि *वाइल्ड लाइफ़ एक्ट* है और वे भी पर्यावरण का हिस्सा हैं। लेकिन उनकी हिफ़ाज़त के लिये बना वन विभाग उनके भोजन का प्रबंध नहीं कर पाता। पिछले कुछ सालों से जंगली जानवरों की संख्या में भी भारी बढ़ोत्तरी हुई है। सरकारें उनकी संख्या कम करने या उनके लिये भोजन का प्रबंध जंगल में कर पाने में नाकामयाब रही है। जंगली जानवरों की समस्या बहुत बड़ा मुद्दा है। इसका समाधान न होने से किसान खेती से विमुख होकर खेती छोड़ रहे हैं।

कैसे रुकेंगी किसानों की आत्महत्यायें

किसानों को अन्नदाता कहा जाता है। जिस देश में किसान आत्महत्या कर रहे हों, उन किसानों के मन की बात जानना, तो बहुत कठिन है। किन्तु उन परिस्थितियों को समझा जा सकता है। आत्महत्या वे किसान ही कर रहे हैं, जिन्होंने विविधता–युक्त खेती छोड़कर एकल व्यापारिक खेती अपनाई और जो खेती की बड़ी लागत के कारण कर्ज़ के जाल में फॅसे। कर्ज़ और ब्याज का बोझ बढ़ता गया और बढ़ता गया।

पूर्व प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने इसके समाधान के लिये किसानों की कर्ज़ माफ़ी का 71 हज़ार करोड़ रुपये का बड़ा पैकेज दिया। फिर भी किसानो की आत्महत्यायें रुकी नहीं। रुकती भी कैसे? कर्ज़ माफी में जो धन आया वो बैंक, साहूकार, खाद–बीज, कीटनाशक व तेल मशीनरियों के कारोबारियों की जेब में गया। कुछ धन भ्रष्ट बैंक कर्मियों और नकली किसानों ने हड़प लिया। किसानों को अगली फसल तो उगानी ही थी। गॉठ में पैसा तो आया ही नहीं था। लिहाज़ा बीज, रासायनिक खाद व कीटनाशक आदि के लिये फिर नया कर्ज़ और आसानी से मिल गया। और फिर कर्ज़ का चक्रवृद्धि ब्याज, और फिर वसूली और फिर आत्महत्याओं में बढ़ोत्तरी।

किसानों की आत्महत्या पर न सरकार चिन्तित हुई, न विपक्ष। आपकी आकाशवाणी भी किसानों के लिये बकवासवाणी ही रही। और समाचार चैनल भी छोटा सा समाचार मानकर आज तक उपेक्षा करते रहे। शायद इसलिये कि किसानों को बीज, खाद, कीटनाशक व आधुनिक उपकरण बेचने वाली देशी–विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ और सरकार की गलत कृषि नीतियॉ खलनायक न बनें। वैसे भी ये कम्पनियॉ कृषि विकास के नाम पर विज्ञान के मार्फ़त मोटा धन प्रचार–प्रसार के लिये देती हैं। किसान उन्हें धेला नहीं देता।

किसानों की आत्महत्या के मनोविज्ञान को समझना थोड़ा मुश्किल हो सकता है, किन्तु एक सीधा और सच्चा कारण यह है, कि आत्महत्या वे किसान कर रहे हैं, जिनकी खेती किसानों की जीवन–पद्धति व संस्कृति आधुनिक कृषि विकास ने छीन ली है। जो अपने और अपने परिवार के लिये विविधतायुक्त खेती की बजाय लागत आधारित एकल व्यापारिक खेती कर कर्ज़ के जाल में फॅस गये हैं।

आत्महत्या रोकने के लिये ज़रूरी है, कि पहले किसान की जीवन–पद्धति और संस्कृति को लौटाया जाये। किसान अपने और परिवार के भरण–पोषण के लिये विविधता–युक्त खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, शाक–सब्ज़ी पैदा करें। आज के युग में पैसा भी ज़रूरी है। इसलिये विविधता–युक्त खेती की पैदावार भी बेचें और खेतों के एक हिस्से में व्यापारिक फसलें भी उगायें।

आज भी देश के अनेक राज्यों के उन हिस्सों को देखें, जहॉ किसान विविधता–युक्त खेती करते हैं। वहॉ के किसान स्वस्थ भी हैं। पंजाब की तरह वहॉ केंसर रोगी नहीं मिलेंगे। उन हिस्सों में किसान आत्महत्या नहीं करते। उत्तराखण्ड में मिश्रित खेती की ''बारानाजा'' पद्धति समृद्ध खेती का अच्छा उदाहरण है। मंडवा के साथ अनेक तरह के दलहन, तिलहन एवं शाक–सब्ज़ी उगाकर वे अपने को और धरती मॉ को स्वस्थ रखते हैं। यही कारण है, कि उत्तराखण्ड पर किसानों की आत्महत्या का दाग़ नहीं लगा।

पशुधन

एक ज़माने में हमारे देश में दूध–घी की नदियॉ बहती थीं। यह कहना थोड़ा अतिशयोक्ति लगता है, किन्तु यह सच्चाई है, कि हरेक किसान के भोजन में दूध–दही ज़रूर होता था। माफ़ करना, हमारे यहॉ चाय का प्रचलन सन् 1960 के दशक के बाद आम हुआ। पहले मेहमानों का स्वागत दही–मट्ठे से होता था। लेकिन दही–मट्ठे का वह स्वाद और घी की वह खुशबू आज भी दिमाग़ में घूमती है। जिस तरह खाने का स्वाद और पौष्टिकता हाइब्रिड बीजों व रासायनिक खादों ने छीनी, उसी तरह दूध–घी का स्वाद गायों की देसी नस्लों के खत्म होने से गया। कहॉ गईं हज़ारों सिंधी, गिर, थारपारकर, साहीवाल व पहाड़ की काली गाय आदि नस्लें? कहॉ गये किसान के बैल? अब सरकारी योजनाओं में पहाड़ों में ट्रैक्टर से काम चलाने के लिये पॉवर टिल्लर सब्सिडी में दिया जा रहा है। किन्तु बैलों पर सब्सिडी नहीं, भैंस और गायों पर अनुदान नहीं।

देसी नस्लों की बजाय जर्सी, फिरिजन और न जाने कौन–कौन सी विदेशी नस्लें लाई जा रही हैं। पशुओं के नैसर्गिक गर्भाधान के बजाय, विदेशों से वीर्य का आयात होता है। हमारे पालतू पशुओं की देशी नस्लें पारम्परिक बीज की तरह लुप्त हो रही हैं। कौन बचायेगा इन देशी नस्लों को?

मान्यवर मोदी साहब, माफ़ करना, चिट्ठी थोड़ी लम्बी हो गई है। पुरानी यादें मन में आई, सो लिख दी। नया जो कुछ हो रहा है, उसे भोगते हुये अपने अनुभव लिख दिये। किन्तु मान्यवर एक बात याद रखना...गॉठ मारें या नहीं, पर इतना समझना कि भारतीय खेती किसानों का पारम्परिक ज्ञान और पारम्परिक जैव संपदा आड़े वक़्त देश के काम ज़रूर आयेगी। हमारा आशावान हैं, टिकाऊ खेती, पौष्टिकता–युक्त भोजन, शुद्ध हवा–पानी के प्रति। किन्तु, चिन्तित हैं, उस विनाशकारी शहरी विकास और शोषणकारी सभ्यता से, जिसनें ''काले वर्षतु प्रजन्य, पृथ्वी शस्य श्यामला'' की संस्कृति को खतरे में डाल दिया। आशा है, आप किसानों की भावनाओं को समझेंगे। सादर, शुभकामनाओं सहित

भवनिष्ठ
विजय जड़धारी
उत्तराखण्ड व देश के अन्य किसानों की ओर से